Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

सल्तनतकालीन मिथिला में शिक्षा का विकास

विजय कुमार मिश्रा
S/o- बैद्यनाथ मिश्र
ग्राम–लदारी, पो0–समैला लालगंज
भाया–केवटी, जिला–दरभंगा, बिहार

Article Info
Volume 3 Issue 3
Page Number: 81-86
Publication Issue :
May-June-2020

Article History
Accepted : 20 June 2020
Published : 30 June 2020

सार–संक्षेप

मिथिलांचल के बहुत से गांव विद्वान नगरी के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ अनेक संस्कृत विद्यापीठ विश्रुत कार्यरत रहे हैं वहाँ सुदूर प्रांतो के मेघावी विद्वान आकर अपनी पूर्ण शिक्षा प्राप्त की है। जिस तरह विश्वविद्यालय नालन्दा महाविहार से पुराण दर्शन काव्य साहित्य अनेक विषयों पर मेधावी छात्र पारंगत विद्वान हुए थे। उसी तरह उदयन विद्यापीठ, कुमारिल विद्यापीठ, प्रभाकर विद्यापीठ आदि संस्थानों में बहुत से विद्वान तैयार हुए थे। यहाँ कला के क्षेत्र में भी विद्वानों की हमेशा रूचि रही है जिससे कला के क्षेत्र में भी यहाँ के विद्वानों ने अनेक विधा की रचना की है। शान्त वातावरण होने के कारण मिथिलांचल में साहित्यिक प्रसार की धारा हमेशा प्रवाहित हुई है। मिथिलांचल के शासक द्विज सेवी होने के कारण संस्कृत विद्वानों के बहुत ही पूर्ण संतोषक रहे हैं। जिससे धर्मशास्त्र के क्षेत्र में भी यहाँ बहुत निबन्धक ग्रंथों का निर्माण हुआ है। प्रत्येक काल में भारतीय संस्कृति के पक्षपाती मिथिलांचल के विद्वानों ने संस्कृत साहित्य का जोरदार प्रचार–प्रसार किया।

शब्द कुंजी : शिक्षा, साहित्य, गुरूकुल, गुरू–शिष्य संबंध

प्रस्तावना

मिथिलांचल में यहाँ की बौद्धिक परम्पराए व निरन्तरता कभी अवरूद्ध या बाधित नहीं हुई। सर्वत्र स्त्रोतस्विनी सी, जाह्नवी की धारा सी जो हिमालय की कोर से हरहराती बहती गंगोत्री के रूप में चलती भारत की उतरी सीमा से लगभग दक्षिणी पूर्वी सीमा तक चली जाती है और तब कहीं सागर के

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

शयनागार में पहुॅचकर गंगा से गंगा सागर तक जाती है ठीक उसी प्रकार का है यह मिथिलांचल में प्रवाहित संस्कृत का स्त्रोत जो प्राचीन एवं अति प्राचीनकाल में मध्यकाल की कालसीमा को पार करती हुई आधुनिक कालसीमा में प्रवेश पाकर भी अपने उद्देश्यपूर्ण लक्ष्यों को रखती हुई चलती ही जा रही है। यह भाषा खासकर ब्राह्मण शिक्षा तथा ब्राह्मण परिवेश में ही सदा उठती बैठती सोती जागती अपना विकास पाती रही है। अन्य जाति वर्ग के विधि व्यवस्था को स्वीकार करना ही पड़ा है। इस ब्राह्मणीय शिक्षा की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है उसके अन्तर्गत गुरू शिष्य संबंध की उत्तमता। गुरू का शिष्य सेवा आत्मिक संबंध होता था। आधुनिक काल में विद्यार्थी प्रवेश के लिए प्रवेश पत्र भर कर अपरिचित शिक्षक के समक्ष जा बैठता है और उनका संबंध रूपये–पैसे से जुड़ता है, जिसमें आन्तरिक विनय प्रेम व श्रद्धा का पूर्ण अभाव रहता है। किन्तु प्राचीनकाल में शिष्य गुरू के समक्ष हाथ में समिधा लेकर उपस्थित होता था। इसका अभिप्राय था कि वह गुरू की सेवा करने के लिए उद्यत है। गुरू भी विद्यार्थी को अपना पुत्र समझकर जो कुछ उसे आता था बिना भेद के बता देता था। अधिकतर पिता अपने पुत्रों को भी स्वयं ही शिक्षा देते थे। श्वैत केतु को उसके पिता के द्वारा महान ज्ञान देने की कथा सर्व विख्यात है। अधिकतर विद्यार्थी अपने आपको गुरू सेवा में अर्पण कर देते थे। ऐसे उदाहरण भी हैं कि जो विद्यार्थी गुरू को अन्य भेट देने में असमर्थ थे वह रात–दिन उन्हीं की सेवा में लगे रहते थे और अवकाश मिलने पर रात को विद्याध्ययन करते थे। यहॉ तक की सम्पन्न घरानों के विद्यार्थी भी गाय चराना, ईंधन लाना, अग्नि जलाना, भिक्षा मांगना तथा अन्य गृहस्थी के कार्य करके गुरू सेवा करते थे। गुरू सेवा आध्यात्मिक उन्नति का एक शक्तिशाली साधन था।[1]

गुरूकुल प्रथा ब्राह्मणीय शिक्षा की एक अनूठी देन है। उपनयन से लेकर दीक्षांत तक विद्यार्थी गुरू गृह पर रहकर विद्याध्ययन करता था। शिक्षक को पर्याप्त धन अपने शिष्य की मनोवैज्ञानिक अवस्था तथा अन्य योग्यताओं को समझने को मिलता था। फिर उसी के अनुसार वह शिक्षा कार्य संचालित करता था। शिष्य उषाकाल में गुरू जागरण से पूर्व उठता था और रात को गुरू शयन के पश्चात् सोता था। इस प्रकार हर समय शिक्षक और शिष्य का सीधा व्यक्तिगत सम्पर्क रहता था जिसमें पारस्परिक परिचय के लिए पर्याप्त सुअवसर था। इस प्रकार प्रायः 12 वर्ष तक गुरूकुल में रहकर विद्या समाप्त होने पर शिष्य अपने घर के लिए विदा होता था। विदा होते समय भी गुरू अपना दीक्षांत उपदेश उसे देता यथा सत्य बोलो, कर्त्तव्य का पालन करो, वेद अध्ययन में प्रमाद मत करो इत्यादि। किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि विद्या समाप्ति के उपरान्त भी गुरू शिष्य के संबंध उसी प्रकार रहते थे।[2]

कहना न होगा कि अद्यतन भी मिथिला में सामान्य शिक्षा में भी गुरू–शिष्य के बीच का संबंध कुछ कमोवेश वैसा ही है जहाँ इन दोनों के बीच आचार–विचार एवं स्नेह–श्रद्धा का पारस्परिक स्वरूप समदृश्य ही है। किन्तु संस्कृत शिक्षा का जहाँ तक संबंध है विश्वविद्यालयीय व्यवस्था उस समय नहीं थी। बावजूद भी विद्यापीठीय व्यवस्था कायम है, गुरू गृह में ही पूर्णतः भारतीय रूप, अन्तेवासी का स्वरूप न रह गया हो किन्तु आचरण से व्यवहार से कर्म से गुरू और शिष्य का संबंध पूर्ववत् ही दृष्टिगोचर होता है और इस प्रकार प्रारंभ से आजतक यही बौद्धिक निरन्तरता शिक्षा के रूप में कायम है। बौद्ध समय के प्रसिद्ध अंग्रेजी इतिहासवेता डॉक्टर रीजडैविड के अनुसार–राजनीतिक सत्ता के साथ–साथ भारतवर्ष में भाषा के प्रमुख का केन्द्र भी बदलता गया है। पहले यह केन्द्र पंजाब में, उसके बाद कौशल में फिर उसके बाद मगध में हुआ और अन्त में जब संस्कृत समस्त भारतवर्ष की भाषा हो गई तब पश्चिमी भारत में सबसे प्रसिद्ध प्रान्तीय भाषा पायी जाती थी। बौद्धधर्म और बौद्ध साम्राज्य के ह्रास के उपरान्त जब वैदिक धर्म और वैदिक जाति का फिर उत्थान हुआ तब उस उत्थान के साथ ही साथ संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य का भी पुनरूत्थान देखा जाता है।[16] इसे ही प्रसिद्ध इतिहासकार डॉक्टर भंडारकर ने भी इस प्रकार लिखा है कि बौद्धधर्म के कमजोर पड़ते ही ब्राह्मणों का जोड़ पड़ने लगा और उस समय तक पाली भाषा के द्वारा जो कुछ हो रहा था वह सब संस्कृत के द्वारा किया जाने लगा। संस्कृत और–प्रांतीय भाषाओं के इतिहास तथा साहित्य के द्वितीय बार हिन्दू धर्म की स्थापना हो गई और गुप्तवंश के राजाओं का अधिकार या प्रमुख स्थापित हो गया तब फिर संस्कृत साहित्य का पुनरूत्थान हुआ और उसी समय कालिदास और वाणभट्ट जैसे कवियुगलों का आविर्भाव हुआ।[3]

बौद्धिक निरन्तरता के ही क्षेत्र में यह भी उल्लेखित करना है कि आज मिथिलांचल में चार विश्वविद्यालय कार्यरत है और इनमें बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर : ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर से भी संस्कृत का अध्ययन–अध्यापन तथा प्रकाशन चलता ही है। विशेषतया दरभंगा शहर में ही स्थित महाराजाधिकार कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा तथा इसी महाराज के पूर्वज दरभंगा राज के संस्थापक पं. महेश ठाकुर के नाम पर नामाधित महेश नगर दरभंगा के मिथिला संस्कृत स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध–संस्थान, दरभंगा इस बौद्धिक निरन्तर को कायम रखने में संलग्न है। इस मिथिला शोध–संस्थान के द्वारा लगभग 70 कीर्तिमान, अमूल्य तथा मूल्यवान पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिसके माध्यम से

आज भी मिथिलांचल के विद्वान संस्कृत भाषा साहित्य के साथ–साथ संस्कृति का भी प्रचार विदेशों तक में करते हैं। इस संस्थान द्वारा प्रकाशन के माध्यम से भी कविशेखर बद्रीनाथ झा, पं. महेश झा, त्रिलोकनाथ झा, प्रो. बाबू मिश्र, मंडलपति झा, प्रो. चन्द्रनारायण मिश्रा, पं. श्री रूपनाथ झा पं. श्री शशिनाथ झा, पं. रामान्तार शर्मा, पं. दयानाथ झा, प्रो. रमानाथ झा, डा. उपेन्द्र ठाकुर, प्रो. एस.एन. झा, श्री धीरानन्द मिश्र, प्रो. उपेन्द्र झा, डा. उमेश मिश्र प्रभृति विद्वानों की सेवा संस्कृति साहित्य की अभिवृद्धि में तथा मिथिलांचल के बौद्धिक विकास में अपना योगदान दे रही है।[4]

मिथिला के विद्वान मिथिला की सीमाओं से बाहर जाकर भी अन्य स्थानीय राजा महाराजाओं के दरबारों में अपनी–अपनी प्रतिभा का उपयोग उन नृपतियों या राज कुमारों के निर्देश एवं आज्ञानुसार पुस्तकों का निर्माण करते थे। इन पुस्तकों में आश्रयदाताओं की प्रशस्तियाँ तथा यशोगान भी है। अभिलेख उत्कीर्ण कराने में भी इन विद्वानों की सरस सुन्दर तथाकर्ण सुखद भाषा का प्रयोग होता था। न्याय दर्शन के पारंगत विद्वान पं. पदुमनाथ आश्रयदाता भूति की प्रशंसा में वीरभद्र चम्पू तथा पं. रघुवंश मिश्र ने कागज के बड़े–बड़े 14 पृष्ठों में मिथिला के खण्डवाला कुल के भूपतियों की विरूदावलियों का अंकन किया। कवीन्द्र गंगानन्द ने भ्रंग–इतिहास तथा भंडार मजरी नाटक की रचना की। जगन्नाथ मिश्र ने सोमातरंगिणी लिखा। कालिदास के कुमार संभव, मेघदूत, शिशुपाल वध जैसे ग्रंथों पर भी भाष्य प्रस्तुत किया गया। व्याकरण कोष छन्द एंव अलंकार पर भी अनेको पुस्तकों की रचना की है। गंगानन्द ने कालडाकिनी की रचनाकर काव्य रचना में आलंकारिक दोषों का दिग्दर्शन कराया। रामानन्द ने इस तरंगिणी की रचना कर सभी प्रकार के अलंकारों का उल्लेख किया, जिसके उदाहरणों में स्वरचित रचनाओं का प्रयोग किया। इसी कोटि के लेखकों में बेनीदत्त, चित्रघर तथा वताधार के लेखक रमापति की व्याकरण की पुस्तकों में गिरिधर उपाध्याय की विमश्त्पर्थ निर्णय ग्रंथ शिक्षा जो भाष्य होने पर भी स्वतंत्र ग्रंथ कहा गया में तर्क एवं व्याकरण का समन्वित रूप मिलता है। प्रियमणि का अमरकोष पर भाष्य तथा परमानन्द का कोष निर्मित हुआ। लोचन शर्मा ने राजतरंगिणी के द्वारा रानी का वर्णन कर संगीत क्षेत्र की रिक्तता पूर्ण की। वनमणि ने अभिलाष प्रतीत संगीत चन्द्र पर संगीत क्षेत्र की रिक्तता पूर्ण की। वनमणि ने अभिलाषा प्रणीत संगीत चन्द्र पर भाष्य प्रस्तुत किया। ज्योतिष के ग्रंथों में नक्षत्रों एवं ग्रहों को चाल के संबंध में वैज्ञानिक ढ़ंग से गणित के नियमानुसार गणना कर ग्रंथों का प्रणवन हुआ। पं. महेश ठाकुर ने यतिवार निर्णय नामक ज्योतिष ग्रंथ की रचना की। इनके पुत्र परमानन्द ठाकुर ने गणित ज्योतिष पर सिद्धांत सुधा का निर्माण किया, हेमानन्द ठाकुर ने ग्रहणमाला का सृजन किया। भरत

उपाध्याय ने 17वीं शताब्दी में रसालनामक पुस्तक लिखी, जिसका संबंध फलित एवं गणित ज्योतिष से है। भाष्कराचार्य के ग्रंथ लीलावती पर भवेश ने अपने विचारानुसार भाष्य प्रस्तुत किया। 'अद्भूत दर्पण' में माधव शर्मा ने शुभ एवं अशुभ शकुनों का फलाफल निवेश किया। शत्रुध्न शर्मा ने मंत्रार्थ दीपिका में संध्या श्राद्ध आदि कर्मो के विषय में प्रयुक्त वैदिक मंत्रों का विवेचन कर उनका स्पष्टीकरण किया। राजा धीर सिंह के पुत्र राजकुमार शदाघर ने तंत्र प्रदीप तथा देवनाथ ठाकुर ने मंत्र कौमुदी तथा जगदानन्द ने कुलदीपक का सृजन किया। नरसिंह ठाकुर ने शंकराचार्य की आनन्द लहरी पर विद्वतापूर्ण भाष्य लिखा। धर्मशास्त्र की पुस्तकों में मानव जीवन के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए धार्मिक, सामाजिक, वैयक्तिक तथा नित्य नैमित्तिक आचार संबंधी नियम बनाया गया, श्रुति स्मृति एवं पुराण वाक्यों का विश्लेषण विवेचन किया गया। इसके अलावे विभिन्न विषयों में शपथ ग्रहण, मांस भक्षण, नामकरण, अन्न प्रासन्न, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह, श्राद्ध, मृतक दाह संस्कार आदि विषयों पर भी विचारपूर्ण निर्णय दिया गया। भवदेव मिश्र ने पातंजलि के योग सूत्र पर भाष्य लिखने के अतिरिक्त शांडिल्य के भक्ति सूत्र पर भी भाष्य ग्रंथ लिखा। सर्वदेशवृत्तान्त संग्रह में महेश ठाकुर ने बादशाह अकबर एवं उनके उत्तराधिकार का इतिहास संस्कृत गद्य में लिखना प्रारंभ किया था जो पूर्ण नहीं हो सका। महेश ठाकुर स्वयं ही अप्रतिभ विद्वान एवं लेखक थे। महेश कुल का शासन मिथिला पर भारत में मुसलमानी शासन के अन्त के पश्चात् की अंग्रेजी शासन की समाप्ति तक बना रहा। मुसलमान शासक के समय से लेकर अंग्रेज शासक के काल तक मिथिला पर विद्या व्यसनी ब्राह्मण कुल के इस हिन्दू राजा का शासन कायम रहने की वजह से संस्कृत साहित्य के विकास मार्ग मे बाधा नहीं आ सकी। ब्राह्मण कुल का यह शासन भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही समाप्त हुआ। इस बीच की अवधि में यानी 1765 ई. में इस्ट–इण्डिया कंपनी के द्वारा दिल्ली के बादशाह शाहआलम से बंगाल बिहार उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर लेने से 1947 ई. के बीच हुई मिथिला में संस्कृत साहित्य के विकास पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

निष्कर्ष :

मिथिला बहुत ही प्राचीनकाल से यथा अपने आदिकाल से ही शिक्षा तथा तीर्थों का भी केन्द्र रही है। यहाँ के सभी वर्गों या जातियों में उच्च शिक्षा व्याप्त थी। साहित्यों, पुराणों, महाभारत आदि में वर्णित मिथिला में शिक्षा की स्थिति एंव स्तर देखने से स्पष्ट होता है कि मिथिलांचल में अधिकांश लोग

शिक्षित ही हुआ करते थे। एक–एक गुरूकुल में दस–दस हजार विद्यार्थी रहते थे जिनकी शिक्षा एवं भोजन का भी प्रबंध गुरूकुल में ही होता था। महर्षि दुर्वासा की शिष्य की संख्या दस हजार कही गई है। अन्नदान के साथ विद्यादान देनेवाले को कुलपति कहा जाता था। महाभारत में मिथिला का उल्लेख एक वृहत्तर शिक्षा केन्द्र के रूप में तो है किन्तु तीर्थ के रूप में नहीं। महाभारत में उल्लिखित ब्रह्मचारिणी सुलभ तथा जनक का संवाद मिथिला की राजसभा में ही हुआ था। ऋषि याज्ञवलक्य का जनक से घनिष्ठ संबंध था। वशिष्ठ, पराशर, माण्डव्य, अष्टावक्र तथा श्वेत केतु आदि मिथिला में शास्त्र चर्चा में संलग्न पाये जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिथिला में अतिप्राचीन काल से शिक्षा का अपना स्वतंत्र स्वरूप था।

संदर्भ :

1. शर्मा, डॉ. राम प्रकाश, मिथिला का इतिहास, पृ.–514
2. मिथिला तत्त्व विमर्ष– पृ–194
3. शर्मा, डॉ. राम प्रकाश, मिथिला का इतिहास, पृ.–531
4. एको दस सहस्त्राणि योडन्नमंदाता दिना भरते सर्व कुलपतिः 1 महाभारत 111